पूर्वोत्तर भारत में सिख गुरुओं की परंपरा और गुरु गोबिन्द सिंह का योगदान

संतोष बंसल

प्राचीन काल से ही पूर्वोत्तर भारत यानी मगध एवं पाटलीपुत्र जैसे नगर, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों के मुख्य केंद्र थे। इन स्थानों पर सिख गुरुओं के योगदान को जांचने से पूर्व हमें नानक पंथ एवं इनकी गुरु परंपरा में दस गुरुओं के विषय में जानकारी लेनी होगी। सिख धर्म के आधार एवं नानक पंथ के प्रवर्तक गुरु नानकदेव जी भ्रमणशील साधु थे और उन्होंने पटना समेत भारत की सभी दिशाओं में यात्राएँ की थी। जिसके फलस्वरूप उनकी बाणी में सत्यता और यथार्थ का बोध है एवं समाज और धर्म के संबंध में उनकी विचारधारा अनुभूति तथा समन्वय पर आधारित है। संत कबीर की भांति उनके काव्य में भी निर्गुण ब्रह्म के प्रति उच्च कोटि की भक्ति भावना विधमान है तथा धार्मिक रूढ़िवाद, जाति के संकीर्ण बंधनों तथा अनाचारों के प्रति उन्होंने सदैव विरोध का स्वर उठाया। डॉ. तारकनाथ बाली के अनुसार, "नानक पंथ की स्थापना राजनीतिक परिस्थितियों के कारण हुई, किन्तु उसका स्वरुप धार्मिक तत्वों के रंग से अनुरंजित है। नानक देव समन्वयशील और उदार प्रवृति के व्यक्ति थे, उनमें अद्भुत संगठन शक्ति, क्षमाशीलता और दूरदर्शिता विधमान थी।" (निर्गुण भक्तिकाव्य-हिंदी साहित्य का इतिहास, सम्पादक-डॉक्टर नगेंद्र) वास्तव में समाज में मानव की समरसता और समन्वयात्मकता में गुरु नानक देव की महान बाणी एवं लंगर अवधारणा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके कार्यों को उनके शिष्य गुरु अंगद देव और उनके बाद गुरु अमरदास, गुरु रामदास ने निरंतर चलाये रखा। सन् 1604 ईसवीं में नानक पंथ के पाँचवे गुरु अर्जन देव जी ने 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में संत कवियों तथा गुरु वाणियों को एकत्रित किया। इनके पश्चात गुरु हरगोबिंद सिंह, गुरु हरराय, गुरु हरकिशन साहिब ने भी इस परंपरा को जारी रखा। नौवें गुरु तेगबहादुर भी गुरु नानक द्वारा बताये मार्ग का अनुसरण करते रहे और उनके द्वारा रचित 115 पद्य 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में सम्मिलित हैं। लगभग एक शताब्दी के बाद दसवें सिख गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपने सबद जोड़े और 'गुरु ग्रन्थ साहिब 'को अपने बाद सिख धर्म का अनंत गुरु बताया।

वस्तुत गुरु गोबिन्द सिंह जी अपने पिता के व्यक्तित्व से बड़े प्रभावित हुए थे। विश्व इतिहास में धर्म एवं मानवीय मूल्यों, आदर्शों एवं सिद्धांतों की रक्षा के लिए प्राणों की आहुति देने वालों में गुरु तेगबहादुर साहब का स्थान अमर है। उन्होंने कश्मीरी पंडितों तथा अन्य हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाने का विरोध किया, जिस के कारण सत्र 1675 ईसवीं में मुगल शासक औरंगजेब ने सबके सामने उनका शीश कटवा दिया था। गुरुद्वारा शीशगंज साहिब उसी स्थान पर है. जहाँ गुरु जी ने कहा था शीश कटवा सकते हैं, केश नहीं। आततायी शासक की धर्म विरोधी और वैचारिक स्वतंत्रता का दमन करने वाली नीतियों के विरुद्ध गुरु तेगबहादुर जी का बलिदान एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक घटना थी। यह गुरुजी के निर्भय आचरण, धार्मिक अडिगता और नैतिक उदारता का उच्चतम उदाहरण था। उस समय गुरु गोबिन्द सिंह की आयु केवल नौ वर्ष थी, जब उन्होंने अपने पिता को बाल सुलभता में कह दिया था." आप से अधिक महापुरुष इस समय कौन होगा?" ऐसे जन्मजात तेजस्वी बालक का जन्म माता गुजरी जी की कोख से 22 दिसंबर, 1666

ईस्वीं को पटना में उसी स्थान पर हुआ था, जहाँ गुरु नानकदेव जी ठहरे थे। चूँकि उनके पिता गुरु तेगबहादुर उस समय अपने परिवार को यहाँ छोड़ आगे चले गए थे और असम में धर्म प्रचार के लिए कार्य कर रहे थे। दरअसल गुरु साहिब बंगाल व् असम की फेरी के दौरान, सासाराम और गया होते हुए यहाँ आए थे. इसीलिए माता गुजरी को प्रसवकाल निकट होने से उन्हें पटना में ही विश्राम करने के लिए कहा। यहाँ गुरु नानक की बाणी से प्रभवित पटना के श्री सलिल चौधरी ने अपने भवन के एक हिस्से को धर्मशाला बनवा दिया था, जहाँ बालक गोबिन्द राय ने अपने जीवन के प्रथम चार वर्ष बिठाये। तत्पश्चात महाराजा रणजीत सिंह ने गुरुद्वारे का निर्माण करवाया, जो तख्त श्री हरिमंदर जी पटना साहिब के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थान पर गुरु गोबिन्द सिंह के बचपन का पंगुरा (पालना), लोहे के चार तीर, तलवार, पादुका तथा हुकुमनामा गुरुद्वारे में सुरक्षित रखा हुआ है एवं माता गुजरी जी का कुआं आज भी यहाँ मौजूद है।

गुरु गोबिन्द सिंह जी का नेतृत्व सिख समुदाय के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण है। जिस समय उनका जन्म हुआ, तब मुगल शासक औरंगजेब की पंथक नीति बड़ी कट्टर थी। वह पंजाब की उस महान आध्यात्मिक परंपरा का घोर विरोधी था, जिसमे गुरुनानक देव जैसी महान आत्माओं का अवतरण हुआ था। गुरु गोबिन्द सिंह ने सत्य, न्याय और स्वतंत्रता के लिए अपने समूचे परिवार का बलिदान किया। उनके दोनों छोटे बेटों को सरहिंद के सूबेदार ने धोखे से पकड़ लिया और धर्म परिवर्तन के लिए राजी ने होने पर उन्हें दीवार में चिनवा दिया था। बड़े दोनों पुत्र पिता द्वारा लड़े चमकौर के युद्ध में काम आये, इस प्रकार उनका निजी बलिदान अकथनीय है। गुरुजी ने मुगल शासक को चुनौती देते हुए 'जफरनामा' के माध्यम से धर्म और मानवता का पाठ पढ़ाने का दुस्साहस किया। उसे स्पष्ट शब्दों में लिखा, "तुम्हारा धर्म से कोई सरोकार नहीं है और न ही तुम मुहम्मद पर विशवास रखते हो। न तुममे ईमान परस्ती है और न ही मैं तुम्हारी किसी शपथ में विश्वास करूंगा।" कहते हैं इस पत्र को पढ़ने के बाद औरंगजेब का हृदय परिवर्तन हुआ और उसने गुरु साहिब को उचित सम्मान दिया। मुक्तसर के घोर युद्ध के बाद गुरुजी दिल्ली आगरा होते हुए दक्षिण की ओर जा रहे थे, तो दिल्ली के निकट ही उन्हें औरंगजेब की मृत्यु की सूचना मिल गयी थी। वहाँ से नांदेड़ पहुँचे तो वहीं सन 1707 ईस्वीं में गोदावरी नदी के तट पर गुरु गोबिन्द सिंह की भेंट एक वैरागी साधु माधोदास से हुई। अतः मुगलों से टकराहट को बनाये रखने तथा अन्याय के उन्मूलन के लिए गुरुजी ने माधोदास को 'बंदा बहादुर' बनाकर अपने उत्तराधिकारी के रूप में पंजाब भेज दिया। उन्होंने भविष्य में एक आदमी के किसी प्रभाव, मोह, दबाव या संबंध भाव से ग्रस्त होकर दिए जाने वाले निर्णय से 'खालसा पंथ' को हमेशा के लिए मुक्ति दिला दी। अपनी इसी धारणा के अंतर्गत उन्होंने मानवीय गुरु परंपरा समाप्त करके 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' की ही गुरु का दर्जा दे दिया 'गुरु मान्यों ग्रन्थ।'

वास्तव में गुरु गोबिंद सिंह ने सन् 1699 में ही बैसाखी के दिन खालसा समूह की स्थापना की थी और पंज प्यारे भी नियुक्त किये थे। इसके लिए उन्होंने शंखनाद करते हुए अपने सेवकों में से पाँच बलिदानियों की मांग की, जो अपना शीश गुरु को भेंट करने को तैयार हों। जिनमें लाहौर का क्षत्रिय दयाराम, दिल्ली का

जाट धर्मदास, द्वारका का धोबी हुकुमचंद, जगन्नाथपुरी का कहार हिम्मतराय और विदर का नाई साहबचन्द आगे आए एवं इन्होंने अपना सर्वस्व गुरु के हवाले कर दिया। गुरुजी ने इन्हे मीठा जल अमृत के रूप में सेवन करवाया और इनके हाथों स्वयं वही जल ग्रहण किया। तथा इनको पाँच प्यारों का नाम दिया और इन्हे पाँच चिन्हों को धारण करने की अनिवार्यता बताई। इसके बाद उन्होंने अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के लिए खालसा के लोगों को तैयार किया एवं उन्हें पाँच ककारों का महत्व समझाया। क्योंकि इन पाँच संज्ञाओं का नाम 'क' अक्षर से था. इसीलिए इन्हे पाँच ककार कहा गया। सबसे ऊपर निरीह जीवों की रक्षा तथा शत्रु से लोहा लेने की वृति के प्रतीक रूप में 'कृपाण' धारण करने का नियम बनाया। 'कच्छ' धारण का अभिप्राय था संयम और केश धरना, जो भारतीय ऋषि-मुनियों की परंपरा का प्रतीक था। कंघा केशों को नित्य स्वच्छ रखने के लिए, तो दाहिने हाथ में 'कड़ा' धारण करना अपने की गुरु के बंधन को स्वीकारने का प्रतीक है। गुरु गोबिन्द सिंह जहाँ एक ओर असहाय, भयभीत, लोगों को उनकी सुप्तावस्था में पड़ी शक्ति को जागृत करने के लिए प्रेरित कर रहे थे, वहीं उनके हाथों में खड्ग उठवा कर उन्हें वीर सैनिक की मनःस्थिति में ला रहे थे। सिख गुरुओं की परंपरा में उनके उल्लेखनीय प्रयास और ऐतिहासिक योगदान को आचार्य हजारी प्रसाद दिवेदी ने व्यक्त करते हुए लिखा, "गुरु गोबिन्द सिंह ने अद्भुत चमत्कार कर दिखाया। जनता निराश थी, उसमें किसी प्रकार का आत्मसम्मान नहीं रह गया था। ऐसे ही लोगों में उन्होंने महान शूरवीर पैदा कर दिए। मृत्यु के भय को मानों मन्त्र के बल से उड़ा दिया। सिर हथेली पर रखकर इन वीरों ने अन्याय को ललकारा और देखते-देखते इतिहास पलट दिया।" (दशम ग्रन्थ, कृष्णावतार)

भगवान राम (लव) के वंशज माने जाने वाले गुरु गोबिन्द सिंह में तलवार और लेखनी, शस्त्र और शास्त्र, दुर्गा और सरस्वती, संत और सिपाही तथा धर्म और वीरता का मणि-कांचन संयोग हुआ था। संवत 1723 से संवत् 1765 तक मात्र 42 वर्षीय उनका जीवन संघर्ष, त्याग और सेवा का अप्रितम संगम था। इतिहास में जिन महापुरुषों को वीर के विशेषण से नवाजा गया है, उनमें वे अग्रणी पुरुष थे। आचार्य हजारी प्रसाद दिवेदी के शब्दों में," गुरु गोबिन्द सिंह का नाम लेते ही, आज का भारतीय एक अपूर्व गौरव और उल्लास का अनुभव करने लगता है। 'वीर' शब्द के अंदर जितनी भी गरिमा, परंपरा-क्रम से, हमारे चित्त में संचित है, वह सब साकार हो उठती है। पवित्र चरित्र, अडिग उत्साह, अकुण्ठ साहस, अकृत्रिम औदार्य, अकुतोभय मनोबल, दीन-दुखियों का निश्चित सहाय, अत्याचार का असंदिग्ध प्रतिरोध, विद्या और तपस्या का नियत संरक्षण और मनोबल का अक्षय भण्डार ही 'वीर' है। गुरु गोबिन्द सिंह इन सब गुणों के मूर्तिमान रूप थे।" अगर आधुनिक शब्दावली में कहा जाए तो उनकी लोकतांत्रिक तत्वों और मूल्यों में गहन आस्था थी। उनका कथन 'पंच ही परमेश्वर और जनता ही जनार्दन है.' उनके इसी विश्वास को इंगित करता है। सामान्य लोगों के प्रति उनके हृदय में अपार स्नेह, दया, करुणा और सहानुभूति की भावना विद्यमान थी। वे सही अर्थों में गरीब नवाज थे, जो नीची जातियों में आत्म-गौरव और शौर्य का भाव भर रहे थे और उनके उत्थान एवं उत्कर्ष के प्रति सचेष्ट थे। इस कारण उनके समकालीन राजपूत राजा और ब्राहमण सलाहकार उनसे रुष्ट रहते थे. "लेकिन गुरुजी ने इन तथा ऐसी अन्य विपरीत-विरोधी क्रिया-कलापों की चिंता किये बिना पतितों, दलितों, अनाथों, शोषितों और पीड़ितों को सहारा दिया, ऊपर उठाया। उनमें प्राण-

शक्ति संचारित करके उन्हें तनकर खड़ा होना सिखाया। कहना न होगा कि हाशिए पर पड़े धूल-धूसरित लोगों को देवता बना दिया।" (लेख-गुरु गोबिन्द सिंह की वर्तमान प्रासंगिकता, लेखक डॉ. लालचंद गुप्त 'मंगल') गुरु गोबिन्द सिंह ने एक ओर अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के लिए कृपाणधारी खालसा की स्थापना की, वहीं राष्ट्र की संस्कृति, शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान और अध्यात्म को चिरंजीवी रखने के लिए उन्होंने खालसा के समानांतर 'निर्मला' का अभियान भी चलाया। खालसा गुट योद्धा था तो निर्मला गुट ज्ञानवान। खालसा का प्रशिक्षण अस्त्र-शास्त्र से होता. तो निर्मला का प्रशिक्षण भाषा, संस्कृति, दर्शन और अध्यात्म के ज्ञान से होता। गुरुजी ने पाँच शिष्यों को चयनित करके संस्कृत भाषा एवं देश की संस्कृति और दर्शन के अध्ययन हेतु वाराणसी भेजा, ताकि वहाँ के शिक्षा केंद्रों में वे लोग ज्ञान प्राप्त कर सकें। उन्होंने स्वयं भी हिंदी भाषा में कई अच्छे और साहित्यिक ग्रंथों की रचना की, जिनमे सुनीति प्रकाश, सर्वलोह-प्रकाश, प्रेमसुमार्ग, बुद्धिसागरं और चंडी चरित्र हैं। चण्डी चरित्र में दुर्गा सप्तशती की कथा बड़ी सुन्दर कविता में कही गयी है एवं प्रौढ़ साहित्यिक भाषा का प्रयोग है। इसके अतिरिक्त गुरु गोबिन्द सिंह जी ने जापु साहिब, अकाल अस्तुति और ज्ञान प्रबोध जैसी रचनाओं को शब्द बद्ध करके जनता को ईश्वर के विराट रूप से परिचित करवाया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके साहित्यिक अवदान को रीतिकाल में रेखांकित करते हुए लिखा, "यद्यपि सब गुरुओं ने थोड़े-बहुत पद भजन आदि बनाए हैं पर ये महाराज काव्य के अच्छे ज्ञाता और ग्रंथकार थे। सिखों में शास्त्रज्ञान का अभाव इन्हें बहुत खटका था और इन्होंने बहुत से सिखों को व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि के अध्ययन के लिए काशी भेजा था। ये हिन्दु भावों और आर्य संस्कृति की रक्षा के लिए बराबर युद्ध करते रहे। 'तिलक' और 'जनेऊ' की रक्षा में इनकी तलवार सदा खुली रहती थी। यद्यपि सिख-सम्प्रदाय की निर्गुण उपासना है पर सगुण स्वरूप के प्रति इन्होंने पूरी आस्था प्रकट की है और देवकथाओं की चर्चा बड़े भक्ति भाव से की है। यह बात प्रसिद्ध है कि ये शक्ति के आराधक थे।" (लेख-रीतिकाल के अन्य कवि, हिंदी साहित्य का इतिहास) अगर हम इतिहास के एक कालखंड में किसी व्यक्ति विशेष के योगदान का आकलन करते हैं तो उसमे उसका सर्वांगीण सहयोग शामिल होता है। वैसे भी एक कवि का लेखन और उसके शब्द जो व्यापक क्रातिकारी प्रभाव पैदा करते हैं, वह उस काल, स्थान के लिए उसका अनन्य अनुदान होता है। उसी सहित्य के श्रवण व पठन से राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक बदलाव होता है। गुरु गोबिन्द सिंह स्वयं तो अच्छे कवि थे ही, अन्य कवियों के आश्रयदाता भी थे। उन्होंने साहित्य की रचना करने, करवाने और श्रोताओं को श्रवण करवाने के जो प्रयत्न किये, वह अद्वितीय है। गुरुजी अरबी, फारसी, पंजाबी, संस्कृत, ब्रज के श्रेष्ठ विद्वान थे। उन्होंने और उनके अनुयायियों ने गुणात्मक और गुणात्मक आधार पर बहुत सारा साहित्य रचा, जिसने भारत के पीड़ित लोगों का मनोबल ऊँचा करने में क्रांतिकारी भूमिका निभाई। गुरुजी के परलोक गमन के पश्चात माता सुंदरी जी ने भाई मनी सिंह जी को गुरुजी की बाणी एकत्र करने को कहा और काफी प्रयत्न करके उनका संकलन किया गया। इसी ग्रन्थ का नाम 'दशम ग्रन्थ' दिया गया, जिसमे जापु, बचित्र नाटक, अकाल उसतति, चण्डी चरित्र, चउबीस अवतार, रूद्र अंवतार, खालसा महिमा, जफरनामा इत्यादि बाणी शामिल है। जहाँ गुरुजी शास्त्रों के प्रेमी थे. वहीं श्रेष्ठ शस्त्रों के भी प्रेमी थे। वे उत्तम रचना लिखने वाले कवियों के साथ, शस्त्र विद्या में निपुण लोगों का सम्मान करते थे। इसके विषय में डॉक्टर नरेंद्र सिंह विर्क अपने लेख में लिखते

हैं, "जहाँ शास्त्र मनुष्य को ज्ञान देने के साथ आत्मिक बल व मनोबल प्रदान करते हैं, वहीं शस्त्र भी स्वयं रक्षा के लिए मनुष्य के मनोबल को ऊँचा करते हैं और वह भय रहित जीवन व्यतीत करता है। गुरुजी ने शास्त्र और शस्त्र से भारतवासियों को भय रहित कर ऊँच-नीच व जात-पात की खाई को खत्म करके सम्मान से जीवन जीने की प्रेरणा दी।" ('गुरु गोबिंद सिंह: शब्द साधक', लेखक उपाध्यक्ष पंजाबी साहित्य अकादमी) इस प्रकार उन्होंने जो भी साहित्य का सूजन किया, उसकी बाणी का आमजन पर गहरा प्रभाव पड़ा। ये दो टूक शब्दों में समाज में फैले भेदभाव का खंडन करते और इसके लिए सभी लोगों को चेताते। वे कहते कि ईश्वर को पाने के लिए मनुष्य तरह-तरह के भेष धारण करता है. किन्तु फिर भी उसे पहचानता नहीं। दोनों धर्मों की किताबों में एक ही स्वरुप का बखान है, उनके लिए ईश्वर अल्लाह में कोई भेद नहीं। जिसके लिए गुरु गोबिन्द सिंह ने 'एक ओंकार' का अलख जगाते हुए कहा-अलह अभेख सोई पुरान अउ कुरान ओई एक ही सरूप सभी एक ही बनात है।' इसीलिए उनके समग्र योगदान की देखते हुए आधुनिक युग में स्वामी विवेकानंद को यह कहना पड़ा, "हिन्दू और मुसलमान, दोनों उनके पैरोकार बने। ऐसे उदाहरण भारत के इतिहास में बहुत कम हैं।" फिर भी हिन्दू-मुस्लिम दोनों धरम के नाम पर कर्मकांडों में उलझे रहे, जिसे लक्षित करते हुए उन्होंने कहा-

कोउ भइओ मुंडीआ संनिआसी कोउ जोगी भइओ कोउ ब्रहमचारी कोउ जती अनुमानबो।

हिंदू तुरक कोउ राफजी इमाम साफी मानस की जाति सबै एकै पहिचानबो।

मनुष्य बिना ज्ञान के 'काल फास के अधीन 'होकर जगत की चाकरी में लगा रहता है। वह लाख उपाय करता है-

तीरथ कोट कीए इसनान दीए बहु दान महा व्रत धारे। देस फिरिओ कर भेस तपोधन केस धरे न मिलै हरि पिआरे।

उठा- संत कबीर की तरह मूर्ति पूजा के विरोध में भी उनका स्वर

काहे कठ पूजत पाहन कठ कछु पाहन में परमेसुर नाही। ताही को पूज प्रभु करिकै जिह पूजत ही अघ ओघ मिटाही। आधि बिआधि के बंधन जेतक नाम के लेत सभै छुटि जाही। ताही को धयानु प्रमान सदा इन फोकट धरम करे फलु नाही।

वे धर्म के आडंबरों को लक्षित कर कहते हैं-कोठ बुतान को पूजत है पसु कोउ मितान को पूजन धाइओ। कूर क्रिआ उरझिओ सभ ही जग स्री भगवान को भेदु न पाइओ।

उनका कहना था कि जीव संसार से प्यार करता है और गुरु उसके मन में परम चेतन के लिए प्यार उपजाता है। यह आध्यात्मिक प्रेम संसारिक प्रेम से अधिक मधुर और आकर्षक होता है, अतः जीव धीरे-धीरे प्यार से ही प्यार को तोड़ता है। अर्थात् नश्वर प्रेम को छोड़कर शाश्वत प्यार के साथ जुड़ता है। परमात्मा के साथ प्यार करना ही भक्ति है और यहीं से मनुष्य की आध्यात्मिक यात्रा शुरू होती है। परम प्रेम का एक अनन्य उदाहरण गुरु गोबिन्द सिंह के इस प्रसिद्ध ख्याल में मिलता है-

मित्र पिआरे नूं हाल मुरीदां दा कहिणा।

तुधु बिनु रोगु रजाईआं दा ओढ़ण नाग निवासां दे रहिणा।

सूल सुराही खंजरु पिआला बिंग कसाईआं दा सहिणा।

यारडे वा सानूं स्थरु चंगा भठ खेड़िआं दा रहिणा।

गुरु गोबिन्द सिंह जी भी संत कवीर की भाति 'ढाई आखर प्रेम' का प्रचार करते हुए, पाखंडों पर प्रहार करके ललकार कर कहते

कहा भयो जो दोड लोचन मूंद के

बैठि रहिओ बक धिआन लगाइओ।

न्हात फिरिओ लीए सात समुद्रनि

लोक गयो परलोक गवाइओ।

बास कीओ बिखिआन सो बैठ कै ऐसे ही ऐसे सु बैस बिताइओ। साचु कहों सुन लेहु सभै जिन प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पाइओ।

उनका मानववादी-मानवतावादी जीवन दर्शन अत्यंत स्पष्ट था-मानस की जात सबै एकै पहचानबो, एक ही सरूप सबै, एकै जोत जानबो।'

वे अपने पदों में गुरु नानक की बाणी 'इक ओंकार सतिनामु, करता पुरखु, निरभउ, निरवैरु, अकाल मूरति. अजूनी, सैभं, गुरु प्रसादि 'का ही उद्घोष करते हैं। जागति जोत जपै निस बासुर एक बिना मन नैक न आनै।

पूरन प्रेम प्रतीत सजै ब्रत गोर मड़ी मट भूल न मानै। तीरथ दान दइया तप संजम एक बिना नह एक पछानै। पूरन जोत जगै घट मैं तब खालस ताहि नखालस जानै।

अंततः उपरोक्त शोध एवं अध्ययन द्वारा सिख गुरुओं की परंपरा एवं सन्दर्भ में दशम् गुरु गोबिंद सिंह के योगदान में हमने देखा कि मध्यकाल में न केवल पूर्वोत्तर भारत, बल्कि सम्पूर्ण आर्यावृत क्षेत्र में इन के गुणों और कार्यों का अमिट प्रभाव पड़ा। वे अपने व्यक्तित्व में धर्म सुधारक, समाज सुधारक, कवि, देशभक्त और विश्व बंधुत्व के गुणों को समेटे हुए थे। यही कारण है कि श्री गुरु नानक देव जी के 550 प्रकाशोत्सव की शुरुआत गुरु गोबिंद जी की जन्मस्थली 'पटना साहिब' से की गयी, जहाँ सारे विश्व से सिख समुदाय के लोग पहुँचे। इस प्रकार सिख गुरुओं की बाणी का प्रचार-प्रसार हुआ एवं उनके आदर्शों को पुनः अपनाने की बात हुई। उनके द्वारा स्थापित मानवीय मूल्यों की पहचान हमें 'कोविड महामारी' के दौरान देखने को मिली, कि कैसे सभी सिख बन्धुओं ने गुरुद्वारों में लंगर तथा ऑक्सीजन का आवंटन किया? न केवल भारत, बल्कि विश्व के सभी देशों में बिना किसी भेदभाव के मानव सेवा का अभूत उदाहरण प्रस्तुत किया।

उन्होंने ऊँच-नीच, जात-पात, देशी-विदेशी में फर्क न करते हुए इंसानियत की 'प्रेम पताका' का 'निसान' फहराया। गुरु गोबिंद सिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर पुस्तक का सम्पादन करते हुए प्रसिद्ध लेखिका कुमुद बंसल जी ने लिखा," इस मनुज-अवतार का हृदय विशुद्ध प्रेम से सराबोर था। उस कालखंड में प्रचलित कुरीतियों को दूर कर गुरु गोबिंद सिंह ने ऐसे समाज-सुधारक की प्रतिष्ठा पाई, जिसका सुधार पक्की तासीर वाला था। प्रेमपूर्ण मानव की भुजाएँ जब तलवार उठाती हैं, तब नीतियों की ऐसी कौंध भी साफ दिखाई पड़ती थी कि घनघोर युद्ध भी धर्म, प्रेम और

सदाचार के दायरे में हो। नीतिपरक युद्ध करने वाला योद्धा अपनी प्रजा का न्यायोचित लालन-पालन करता था। गुरु गोबिंद सिंह की आनंदपुरी में कवि, पंडित, फकीर, सूफी, दुःखी-सुखी सभी पनाह लेते थे। गुरु गोबिंद सिंह यह सब इसीलिए कर पाते थे, क्योंकि वे आत्म-तत्ववेत्ता व ब्रह्मज्ञानी थे। इस ब्रह्मज्ञान का उपयोग आपने सांसारिक कार्यों को करने में किया।"

(भूमिका-दशम गुरु: जीवन दर्शन, पुस्तक)